दिल्ली उच्च न्यायालय : नई दिल्ली

सुरक्षित तिथि: 16.12.2013
उद्घोषित तिथि: 15.01.2014

<u>नि.प्र.अ. (मूल पक्ष) 24/2012, सि.वि.आ.4236/2012, 4237/2012 और 5451/2013</u>

श्रीमती प्रीति सतीजा .....अपीलार्थी

द्वारा: श्री सुधीर मेंदीरत्ता, अधिवक्ता।

बनाम

श्रीमती राज कुमारी व अन्य ..... प्रत्यर्थीगण

द्वारा: प्रत्यर्थी सं. 1 के लिए श्री निशांत दत्ता एवं सुश्री गरिमा हुड्डा, अधिवक्तागण।

कोरम:
माननीय न्यायमूर्ति श्री एस. रवींद्र भट
माननीय न्यायमूर्ति श्री नजमी वजीरी

<u>न्यायमूर्ति श्री एस. रवींद्र भट</u>

1. प्रतिवादी ने विद्वान एकल न्यायाधीश के निर्णय और आदेश के खिलाफ अपील की है, जिन्होंने प्रत्यर्थी वादी, उसकी सास द्वारा प्रस्तुत वाद को सिविल

प्रक्रिया संहिता (सि.प्र.स.) के आदेश XII नियम 6 को लागू करके स्वीकार कर लिया था। वादी ने प्रतिवादी/बहू के कब्जे/बेदखल करने की डिक्री मांगी थी।

2. वादी ने संपत्ति सं. 2245, हडसन लेन, जीटीबी नगर, किंग्सवे कैंप, दिल्ली - 110009 (इसके बाद इसे "वाद संपत्ति" कहा जाएगा) के एक हिस्से के संबंध में प्रतिवादीगण, उसके बेटे और सास के खिलाफ कब्जे, स्थायी निषेधाज्ञा और *अंत:कालीन* लाभ हेतु वाद दायर किया था। पहली प्रतिवादी वादी की बहू और उसके त्यागे हुए बेटे की पत्नी है। बेटे को भी दूसरे प्रतिवादी के रूप में खड़ा किया गया था। वाद संपत्ति वादी के पति (श्री टेक चंद) की थी, जिनकी मृत्यु 30.06.2008 को हुई थी और वे 20.11.2006 की पंजीकृत वसीयत छोड़ गए थे, जिसके द्वारा उन्होंने वाद संपत्ति वादी को दे दी थी। वादी ने आरोप लगाया कि उसके पति की मृत्यु के बाद, वह उस संपत्ति की एकमात्र और पूर्ण मालिक बन गई। वादी ने दावा किया कि वाद संपत्ति का पिछला हिस्सा जिसमें एक शयनकक्ष, एक बाथरूम और एक छोटा रसोईघर है, प्रतिवादीगण के कब्जे में है। उसने आरोप लगाया कि चूंकि उसके और प्रतिवादीगण के बीच संबंध खराब हो गए हैं, इसलिए वह चाहती है कि वे संपत्ति खाली कर दें। वाद के लंबित रहने के दौरान, वादी ने कथित स्वीकरोक्ति पर डिक्री के लिए अपने अधिकार का आरोप लगाते हुए एक आवेदन दायर किया।

3. स्वीकरोक्ति पर डिक्री के लिए आवेदन के जवाब में अपीलार्थी की स्थिति यह थी कि वादी वाद संपत्ति का पूर्ण स्वामी नहीं था क्योंकि वसीयत को प्रोबेट नहीं दिया गया था और अभी तक कानून में इसका परीक्षण नहीं हुआ था और बिना इसके प्रोबेट किए, वसीयत लागू नहीं हो सकती।

4. विद्वान एकल न्यायाधीश की राय थी कि चूंकि प्रतिवादी/अपीलार्थी ने वसीयत के उचित निष्पादन पर विवाद नहीं किया था, और केवल इस बात पर विवाद किया था कि इसका कोई कानूनी प्रभाव नहीं था क्योंकि इसकी प्रोबेट नहीं की गई थी, इसलिए प्रभावी रूप से एक स्वीकृति थी। इसके अतिरिक्त, उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि प्रोबेट की मांग करना अनावश्यक है, और इस प्रकार, वसीयत, स्वीकार किए जाने के बाद, पक्षकारगण के बीच प्रभावी रहती है। आक्षेपित आदेश में वादी की ओर से प्रतिवादीगण को जारी किए गए दो नोटिसों और उसके आरोप का भी उल्लेख किया गया है कि वे उसे परेशान कर रहे थे और वाद के परिसर में रह रहे थे। न्यायालय ने यह भी देखा कि अपीलार्थी ने सिविल न्यायाधीश, उत्तर पश्चिम, रोहिणी न्यायालय, दिल्ली (वाद सं. 16/2010) के समक्ष एक वाद दायर किया था, जो अभी भी लंबित है। महत्वपूर्ण बात यह है कि एकल न्यायाधीश को इस तथ्य की भी जानकारी थी कि अपीलार्थी ने घरेलू हिंसा से महिला संरक्षण अधिनियम, 2005 (इसके बाद "2005 अधिनियम") के प्रावधानों पर भरोसा किया था।

5. आक्षेपित निर्णय में विद्वान एकल न्यायाधीश ने 2005 अधिनियम के प्रावधानों की प्रयोज्यता के संबंध में अपीलार्थी की दलीलों को खारिज कर दिया। यह माना गया कि वाद संपत्ति को "साझा घर" नहीं माना जा सकता। इस निष्कर्ष को ध्यान में रखते हुए, एकल न्यायाधीश ने आंशिक रूप से वाद को डिक्रीत करते हुए कहा कि प्रतिवादी बेदखल किए जाने हेतु उत्तरदायी है।

6. अपीलार्थी ने तर्क दिया कि विद्वान एकल न्यायाधीश इस बात पर विचार करने में विफल रहे कि आदेश 12, नियम 6 के तहत स्वविवेक का प्रयोग करने के लिए इस तरह की कोई असंदिग्ध स्वीकृति नहीं थी। इस संबंध में, यह तर्क दिया गया कि लिखित बयान में वादी और उसके बेटे, दूसरे प्रतिवादी के बीच मिलीभगत का आरोप लगाया गया था; इसने वसीयत के उचित निष्पादन को स्वीकार नहीं किया था और कहा था कि ऐसी परिस्थितियों का परीक्षण प्रोबेट कार्यवाही में किया जाना चाहिए। इन परिस्थितियों में, न्यायालय को स्वीकृति पर डिक्री देने में अपने स्वविवेक का प्रयोग नहीं करना चाहिए था। आगे यह तर्क दिया गया कि एकल न्यायाधीश ने *एस.आर. बत्रा व अन्य बनाम श्रीमती तरुणा बत्रा*, (2007) 3 एससीसी169 में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय तथा *शुमिता दीदी संधू बनाम संजय सिंह संधू*, 2007 (96) डीआरजे 697 में इस न्यायालय के विनिर्णय पर भरोसा करके गलती की। यह तर्क दिया गया कि उन निर्णयों ने "साझा घर" की महत्वपूर्ण परिभाषा को नजरअंदाज कर दिया तथा प्रत्यर्थी, आवेदक के पुरुष रिश्तेदारों तक सीमित

नहीं था, बल्कि धारा 2 (थ) तथा धारा 19 (1) (च) के परंतुक के आधार पर महिला रिश्तेदारों तक भी सीमित था। यह तर्क दिया गया कि वर्तमान मामले में पति को नोटिस नहीं दिया गया था तथा वह पेश नहीं हुआ था; उसके तथा प्रथम प्रतिवादी, अर्थात् अपीलार्थी के बीच वैवाहिक विवाद थे। अधिवक्ता ने आग्रह किया कि वादी तथा द्वितीय प्रतिवादी ने मिलीभगत की; बेटा गायब हो गया। उसी समय, वैवाहिक विवाद शुरू होने के बाद वादी ने उसे "अस्वीकार" कर दिया और वाद दायर करने के लिए आगे बढ़ा। अधिवक्ता ने जोर देकर कहा कि इन रणनीतियों और उपकरणों पर काबू पाने के लिए ही "साझा घर" को व्यापक रूप से परिभाषित किया गया था, और पत्नी को, 2005 के अधिनियम के तहत, धारा 17 के आधार पर ऐसे परिसर में रहने का अधिकार दिया गया था। यह भी बताया गया कि धारा 26 के आधार पर, 2005 के अधिनियम के प्रावधानों को कार्यवाही के किसी भी चरण में किसी भी न्यायालय के समक्ष लागू किया जा सकता है। यह तर्क दिया गया कि अपीलार्थी दयनीय स्थिति में है, क्योंकि उसे दो स्कूल जाने वाले बच्चों का भरण-पोषण करना है, जिन्हें उसके पति ने लावारिस छोड़ दिया है और संबंधित मजिस्ट्रेट द्वारा उसके पक्ष में दिए गए भरण-पोषण के आदेशों को लागू नहीं किया गया है। यह भी बताया गया कि पत्नी ने यह आरोप लगाते हुए आपराधिक कार्यवाही शुरू की है कि पति ने भारतीय दंड संहिता (भा.दं.सं.) की धारा 406 और 498-क के तहत दंडनीय अपराध किए हैं।

7. वादी के अधिवक्ता ने आक्षेपित आदेश को उचित ठहराया। उन्होंने तर्क दिया कि अपीलार्थी ने असंदिग्ध स्वीकारोक्ति की है, जिससे वादी को आदेश 12 नियम 6 के तहत डिक्री का अधिकार प्राप्त है। अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि शुमिता दीदी संधू और एस.आर. बत्रा के मामले में लिए गए निर्णय साझा घर में पत्नी के आवास के अधिकार की सीमाओं के बारे में निर्णायक थे। यहां, वाद परिसर वादी का था और अपीलार्थी इसमें रहने के अधिकार का दावा नहीं कर सकती थी, क्योंकि उसके पति के पास उन परिसरों के संबंध में - स्वामित्व या अन्यथा कोई अधिकार नहीं था।

8. पहला सवाल जिस पर इस न्यायालय को विचार करना है, वह यह है कि क्या दलीलों में इस तरह के स्वीकारोक्ति थे कि न्यायालय को स्वीकृति पर कब्जे के लिए डिक्री बनाने में सक्षम बनाया जा सके। वाद के अभिलेख मांगे गए और इस न्यायालय ने उन पर गौर किया। लिखित बयान में, अपीलार्थी ने दावा किया था कि वाद बनाए रखने योग्य नहीं था क्योंकि वाद परिसर उसका वैवाहिक घर था जहाँ वह रहने की हकदार थी। एक से अधिक स्थानों पर, (विशेष रूप से इस दलील के जवाब में कि वादी संपत्ति का "पूर्ण स्वामी" है), अपीलार्थी ने सुगमता से वादी की हकदारी से इनकार किया और कहा कि उसे एकमात्र स्वामित्व के दावे का सख्त सबूत देना पड़ा। इस आरोप के संबंध में कि स्वामित्व स्वर्गीय टेक चंद की पंजीकृत वसीयत के आधार पर वसीयती न्यागमन के कारण था, अपीलार्थी ने उन्हें यह कहते हुए अस्वीकार कर दिया

कि ऐसा मामला "*उसकी जानकारी के अनुसार*" नहीं था। चूंकि उसे कोई जानकारी नहीं थी और वादी को कठोर प्रमाण प्रस्तुत करने पड़े, इसलिए अपीलार्थी ने कहा कि यह प्रोबेट प्राप्त करके किया जा सकता है - एक ऐसा तरीका जिसका अभी तक सहारा नहीं लिया गया था। इसलिए, इन कथनों का सार यह था कि अपीलार्थी ने वादी की हकदारी को अस्वीकार कर दिया। उसने वसीयत को स्वीकार नहीं किया, और लिखित बयान में जो स्पष्ट स्वीकृति थी वह पक्षकारगण के संबंधों के बारे में थी।

9. यहाँ प्रश्न यह है कि क्या समग्र रूप से ली गई दलीलें कानून द्वारा परिकल्पित एक *असंदिग्ध* और स्पष्ट स्वीकृति की ओर इशारा करती हैं। *उत्तम सिंह दुग्गल एंड कंपनी बनाम यूनाइटेड बैंक ऑफ इंडिया व अन्य* 2000 (7) एससीसी 120 और *जीवन डीजल एंड इलेक्ट्रिकल्स लिमिटेड बनाम जसबीर सिंह चड्ढा व अन्य,* (2010) 6 एससीसी 601 में उल्लिखित स्तर जिसे न्यायालयों को दलीलों पर विचार करते समय और स्वीकृति पर डिक्री तैयार करने पर विचार करते समय अपनाना होता है, वह यह है कि क्या *"मामले की स्पष्ट और सुगम स्वीकृति"* (वादी की, आवेदन का बचाव करने वाले पक्षकार द्वारा) है। इसमें कोई विवाद नहीं है कि *"स्पष्ट और सुगम स्वीकृति"* के बारे में कोई सुनहरा नियम नहीं है। न्यायालय को दलीलों और दस्तावेजों के समग्र प्रभाव को ध्यान में रखते हुए मामले के तथ्य पर निर्भर दृष्टिकोण से आगे बढ़ना होगा। यह *गिल्बर्ट बनाम स्मिथ*, 1875-76 (2) अध्याय 686 के निर्णय

से स्पष्ट है, जिस पर सर्वोच्च न्यायालय ने *जीवन डीजल* (पूर्वोक्त) में भरोसा किया था। यह प्रश्न *वेस्टर्न कोलफील्ड्स लिमिटेड बनाम मेसर्स स्वाति इंडस्ट्रीज,* एआईआर 2003 बॉम 369 में विस्तृत किया गया था। *जीवन डीजल* (पूर्वोक्त) में, यह अभिनिर्धारित किया गया था कि:

> *"एक पक्षकार द्वारा दूसरे पक्षकार के मामले में स्पष्ट, असंदिग्ध स्वीकृति है या नहीं, यह अनिवार्य रूप से तथ्य का प्रश्न है और इस प्रश्न पर निर्णय मामले के तथ्यों पर निर्भर करता है। यह प्रश्न, अर्थात् क्या कोई स्पष्ट स्वीकृति है या नहीं, न्यायिक पूर्व निर्णय के आधार पर तय नहीं किया जा सकता है। "*

10. इसलिए न्यायालय सि.प्र.स. के आदेश XII नियम 6 के अनुसार किसी वाद में डिक्री देने (या डिक्री न देने) का निर्णय केवल किसी विशेष दलील या स्वीकृति के आधार पर नहीं ले सकते। बल्कि, संबंधित पक्षकारगण की दलीलों और दस्तावेजों के समग्र प्रभाव को तौला जाना चाहिए। न्यायालय को इस बात का ध्यान रखना होगा कि जो स्पष्ट रूप से स्वीकृति प्रतीत होती है, उसे वाद के दौरान वादी द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त, आदेश 12 नियम 6 के तहत नियंत्रित अभिव्यक्ति यह है कि न्यायालय स्वीकृति पर डिक्री दे सकता है। इस पहलू का विश्लेषण करना महत्वपूर्ण है क्योंकि याचिकाओं में या किसी दस्तावेज में या किसी बयान के दौरान स्वीकृति को अलग-अलग नहीं देखा जा सकता है।

11. इस मामले में, लिखित बयान में अपीलार्थी का लगातार रुख और साथ ही आदेश 12 नियम 6 सि.प्र.स. के तहत आवेदन के जवाब में वादी के पूर्ण स्वामित्व के दावे को नकारना था। यह इनकार सुगम था। अपीलार्थी ने यह भी दावा किया कि वादी और उसके पति ने मिलीभगत की थी और वाद उस मिलीभगत के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए एक कदम था। वह उन प्रस्तुतियों के समर्थन में शिकायत, आपराधिक कार्यवाही और उसके भरण-पोषण के लिए दिए गए आदेशों की प्रतियों पर निर्भर करती है। उसने यह भी जोड़ा कि वादी को प्रोबेट प्राप्त करना चाहिए, लिखित बयान में विस्तार से बताया गया है, जिसे - विद्वान एकल न्यायाधीश के संबंध में - दलीलों से निकाला गया था। एक वसीयत प्रोबेट है या नहीं, यह साबित करने की आवश्यकता है, एक बार जब संपत्ति का स्वामित्व विवादित हो जाता है और इस तरह की हकदारी का दावा पूरी तरह से वसीयत पर आधारित होता है। यह पहलू इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि वाद की स्थिति में वादी के लिए भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम और साक्ष्य अधिनियम के प्रावधानों के अनुरूप वसीयत के उचित निष्पादन को साबित करना आवश्यक होगा। वादी के आवेदन पर लिखित कथन और उत्तर का वह भाग, जो वादी के प्रोबेट प्राप्त करने के दायित्व से संबंधित है, हमारे विचार में, आरोपित निर्णय के संबंध में, यह मानने का एकमात्र आधार नहीं होना चाहिए था कि वादी स्वीकृति पर डिक्री का हकदार था। आरोपित निर्णय वास्तव में वसीयत के उचित निष्पादन के आधार पर वादी के वाद के परिसर पर अधिकार को मानता है, जिसे साबित नहीं

किया गया। इसलिए, इस न्यायालय की राय है कि अपीलार्थी की दलीलों को सुगम या अयोग्य नहीं माना जा सकता है, और स्वीकृति पर डिक्री की आवश्यकता होती है।

12. अगला प्रश्न यह है कि क्या विद्वान एकल न्यायाधीश का यह मानना सही था कि 2005 के अधिनियम के प्रावधानों से अपीलार्थी को कोई सहायता नहीं मिली और वह दावा नहीं कर सकती कि वाद परिसर "साझा घर" है।

13. प्रश्न की जांच 2005 के अधिनियम के प्रावधानों के मद्देनजर की जानी चाहिए। अधिनियम की धारा 2(क) में कहा गया है:

> *"2(क) "पीड़ित व्यक्ति" का अर्थ है कोई भी महिला जो प्रत्यर्थी के साथ घरेलू संबंध में है या रही है और जो प्रत्यर्थी द्वारा घरेलू हिंसा के किसी कृत्य के अधीन होने का आरोप लगाती है;"*

धारा 2(च) में कहा गया है कि:

> *"2(च) "घरेलू संबंध" से तात्पर्य दो व्यक्तियों के बीच संबंध से है जो किसी भी समय एक साझा घर में एक साथ रहते हैं या रह चुके हैं, जब वे रक्त संबंध, विवाह या विवाह, गोद लेने की प्रकृति के संबंध के माध्यम से संबंधित होते हैं या संयुक्त परिवार के रूप में एक साथ रहने वाले परिवार के सदस्य होते हैं;"*

धारा 2(ध) साझा घर को इस प्रकार परिभाषित करती है:

> *"2(ध) "साझा घर" का अर्थ है एक घर जिसमें पीड़ित व्यक्ति रहता है या किसी भी स्तर पर अकेले या प्रत्यर्थी के साथ घरेलू संबंध में रहता था और इसमें ऐसा घर शामिल है, चाहे वह पीड़ित व्यक्ति और प्रत्यर्थी द्वारा संयुक्त रूप से स्वामित्व में हो या किराए पर*

लिया गया हो, या उनमें से किसी एक के स्वामित्व में हो या किराए पर लिया गया हो, जिसके संबंध में पीड़ित व्यक्ति या प्रत्यर्थी या दोनों का संयुक्त रूप से या अकेले कोई अधिकार, हकदारी, हित या इक्विटी हो और इसमें ऐसा घर शामिल है जो संयुक्त परिवार से संबंधित हो सकता है जिसका प्रत्यर्थी सदस्य है, भले ही प्रत्यर्थी या पीड़ित व्यक्ति का साझा घर में कोई अधिकार, हकदारी या हित हो"

धारा 2 (थ) परिभाषित करती है कि प्रत्यर्थी कौन है: *"2(थ) "प्रत्यर्थी" का अर्थ है कोई वयस्क पुरुष व्यक्ति जो पीड़ित व्यक्ति के साथ घरेलू संबंध में है या रहा है और जिसके खिलाफ पीड़ित व्यक्ति ने इस अधिनियम के तहत कोई राहत मांगी है"*

धारा 3(क) में कहा गया है कि कोई कार्य घरेलू हिंसा माना जाएगा यदि वह

"पीड़ित व्यक्ति के स्वास्थ्य, सुरक्षा, जीवन, अंग या कल्याण, चाहे मानसिक या शारीरिक, को नुकसान पहुंचाता है या चोट पहुंचाता है या ऐसा करने की प्रवृत्ति रखता है और इसमें शारीरिक दुर्व्यवहार, यौन दुर्व्यवहार, मौखिक और भावनात्मक दुर्व्यवहार और आर्थिक दुर्व्यवहार करना शामिल है;" या

(जोर दिया गया)

"आर्थिक दुरुपयोग" की परिभाषा में निम्नलिखित शामिल हैं:

"(क) सभी या किसी आर्थिक या वित्तीय संसाधनों से वंचित करना, जिसका पीड़ित व्यक्ति किसी कानून या प्रथा के तहत हकदार है, चाहे वह न्यायालय के आदेश के तहत देय हो या अन्यथा या जिसकी पीड़ित व्यक्ति को आवश्यकता के कारण आवश्यकता होती है, जिसमें पीड़ित व्यक्ति और उसके बच्चों के लिए घरेलू आवश्यकताएं, यदि कोई हो, स्त्रीधन, संपत्ति, पीड़ित व्यक्ति के संयुक्त या अलग से स्वामित्व, साझा घर से

संबंधित किराये का भुगतान और भरण-पोषण शामिल है, लेकिन इन्हीं तक सीमित नहीं है।

अधिनियम के तहत एक पीड़ित व्यक्ति धारा 12(2) में उल्लिखित राहत के लिए धारा 12 के तहत मजिस्ट्रेट से संपर्क कर सकता है। धारा 20(1)(घ) के तहत मजिस्ट्रेट धारा 12(1) के तहत आवेदन का निपटारा करते समय भरण-पोषण प्रदान कर सकता है। धारा 26(1) में प्रावधान है कि धारा 20 में उल्लिखित राहत किसी भी कानूनी कार्यवाही में, सिविल न्यायालय, पारिवारिक न्यायालय या आपराधिक न्यायालय के समक्ष भी मांगी जा सकती है।

14. कुछ ऐसे निर्णय हैं, जिनमें यह दृष्टिकोण अपनाया गया है कि चूंकि *एस.आर. बत्रा* मामले में दिए गए निर्णय में अभिनिर्धारित किया गया था कि जब परिसर पति के स्वामित्व में नहीं होता है, तो आवेदक/पत्नी इसे साझा घर होने का दावा नहीं कर सकते हैं (उदाहरण के लिए, *नीतू मित्तल बनाम कांता मित्तल*, (2008) डीएलटी 691, जिसमें कहा गया था कि पति के माता-पिता की स्व-अर्जित संपत्ति साझा घर नहीं है)।

15. ये निर्णय, सम्मानपूर्वक, क़ानून की गलत समझ पर आगे बढ़े। इसके लिए, *इवनीत सिंह बनाम प्रशांत चौधरी,* 177(2011) डीएलटी 124 में दिए गए निर्णय को याद करना उपयोगी होगा, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि:

"11. घरेलू हिंसा अधिनियम से प्राप्त अधिकारों को समझने की कुंजी, "घरेलू संबंध" जैसी अवधारणाएँ हैं - जो अन्य बातों के साथ-साथ, "दो व्यक्तियों के बीच का संबंध है जो किसी भी समय एक साझा घर में एक साथ रहते हैं या रह चुके हैं, जब वे रक्त संबंध, विवाह से संबंधित होते हैं..."; कौन "प्रत्यर्थी" है - यह शब्द केवल उन पुरुषों तक ही सीमित नहीं है जो पीड़ित व्यक्ति, यानी परिवादी महिला के साथ रह चुके हैं, बल्कि धारा 2(थ) के परंतुक के आधार पर "पति के रिश्तेदार..." (उस मामले में जहाँ घरेलू संबंध विवाह है या था) तक भी सीमित है। इस पहलू को विभिन्न उच्च न्यायालयों द्वारा कई निर्णयों में देखा और स्पष्ट किया गया है (संदर्भ अफजलुन्निसा बेगम बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, एमएएनयू/एपी/0206/2009: 2009 क्रि.एल.जे. 4191; अर्चना हेमंत नाइक बनाम उर्मीलाबेन नाइक, एमएएनयू/एमएच/ 0994/2009: 2010 क्रि.एल.जे. 751 और वर्षा कपूर बनाम भारत संघ, 2010 की रिट याचिका (आप.) सं. 638, इस उच्च न्यायालय की एक खंड न्यायपीठ द्वारा दिनांक 03.06.2010 को निर्णय लिया गया। यह माना गया है कि जब कोई कानून एक ही क़ानून के विभिन्न भागों में एक ही शब्द का उपयोग करता है, तो यह अनुमान लगाया जाता है कि इसका उपयोग पूरे क़ानून में एक ही अर्थ में किया गया है (सुरेश चंद बनाम गुलाम चिश्ती, : (1990) 1 एससीसी 593), जब तक कि संदर्भ अन्यथा इंगित न करे (भोगीलाल चुन्नीलाल पंड्या बनाम बॉम्बे राज्य, 1959 पूरक (1) एससीसी 593)। अब, धारा 19 का प्रासंगिक भाग इस प्रकार है:

> "19. *आवास आदेश.-(1) धारा 12 की उपधारा (1) के अंतर्गत आवेदन का निपटारा करते समय, मजिस्ट्रेट, यह संतुष्ट होने पर कि घरेलू हिंसा हुई है, आवास आदेश पारित कर सकता है - (क) प्रत्यर्थी को साझा घर से*

पीड़ित व्यक्ति के कब्जे को बेदखल करने या किसी अन्य तरीके से उसमें व्यवधान डालने से रोकना, चाहे प्रत्यर्थी का साझा घर में कोई कानूनी या न्यायसंगत हित हो या न हो...."

(*जोर दिया गया*)

आवास आदेश बनाने की न्यायालय की शक्ति की व्यापक और विस्तृत प्रकृति "साझा घर" की परिभाषा के आयाम से भी रेखांकित होती है, जो "जहां पीड़ित व्यक्ति रहता है या किसी भी स्तर पर रहता है-

(i) घरेलू संबंध में

(ii) अकेले या प्रत्यर्थी के साथ और इसमें ऐसा घर शामिल है

(क) चाहे वह पीड़ित व्यक्ति और प्रत्यर्थी द्वारा संयुक्त रूप से स्वामित्व में हो या किराए पर लिया गया हो, या

(ख) उनमें से किसी एक के स्वामित्व में हो या किराए पर लिया गया हो

(iii) जिसके संबंध में पीड़ित व्यक्ति या प्रत्यर्थी या दोनों का संयुक्त रूप से या अकेले कोई अधिकार, हकदारी, हित या इक्विटी हो और इसमें शामिल है

(iv) ऐसा घर जो संयुक्त परिवार से संबंधित हो सकता है जिसका प्रत्यर्थी सदस्य है, भले ही प्रत्यर्थी या पीड़ित व्यक्ति का साझा घर में कोई अधिकार, हकदारी या हित हो या नहीं।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि संसदीय इरादा साझा घर में पीड़ित व्यक्तियों के अधिकारों को सुरक्षित करना था, जिसे प्रत्यर्थी (पति के रिश्तेदार सहित) द्वारा किराए पर लिया जा सकता था या जिसके संबंध में प्रत्यर्थी के पास संयुक्त रूप से या अकेले कोई अधिकार, हकदारी, हित या "इक्विटी" थी। उदाहरण के लिए, सास के स्वामित्व वाले परिसर में

उसके साथ रहने वाली विधवा "घरेलू संबंध" के अंतर्गत आती है; भले ही सास के पास कोई अधिकार, हकदारी या हित न हो, लेकिन वह उन परिसरों में किरायेदार या "इक्विटी" की हकदार हो, वही "साझा घर" होगा। ऐसी परिस्थितियों में, विधवा बहू, बेदखली से सुरक्षा का दावा कर सकती है, भले ही उसके पति के पास परिसर में कभी कोई स्वामित्व अधिकार न रहा हो, क्योंकि वह उसमें रहती थी; यदि सास किरायेदार है, तो, इस आधार पर कि वह किरायेदार है, या इक्विटी रखने वाला कोई व्यक्ति है।

यद्यपि, यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि धारा 19, "प्रत्यर्थी" का उल्लेख करते हुए, 19(1)(ख) के परंतुक के तहत एक सीमित अपवाद निर्धारित करती है, जो महिलाओं को साझा घर से खुद को हटाने के निर्देश से छूट देती है। हालाँकि, धारा 19 के तहत अन्य राहतों के लिए, विशेष रूप से सुरक्षा आदेशों के संबंध में, ऐसा कोई अपवाद नहीं बनाया गया है। स्पष्ट रूप से, यदि विधानमंडल महिलाओं के पक्ष में एक और अपवाद बनाना चाहता था, तो वह ऐसा कर सकता था। यहाँ यह चूक जानबूझ कर की गई है और अधिनियम की बाकी योजना के अनुरूप है।

घरेलू संबंध का एक और उदाहरण अनाथ बहन या विधवा माँ हो सकती है, जो अपने भाई या बेटे के घर में रहती है; यह घरेलू संबंध की परिभाषा के अंतर्गत आता है, (जो ऐसा है जहाँ पक्षकार रक्त संबंध या विवाह से संबंधित हैं) एक साझा घर का गठन करता है, क्योंकि भाई स्पष्ट रूप से प्रत्यर्थी है। ऐसे मामले में भी, यदि विधवा माँ या बहन को बेदखल करने की धमकी दी जाती है, तो वे अधिनियम के तहत राहत प्राप्त कर सकती हैं, भले ही संपत्ति पर बेटे या भाई का विशेष स्वामित्व हो। इस प्रकार, उन संपत्तियों के

विरुद्ध आवास के अधिकार को बाहर करना जहाँ पति का कोई अधिकार, हिस्सा, हित या हकदारी नहीं है, आवास के अधिकार की उपयोगिता की सीमा को गंभीर रूप से कम कर देगा। बॉम्बे उच्च न्यायालय ने अर्चना हेमंत नाइक (पूर्वोक्त) में निम्नलिखित शब्दों में इस बात पर ध्यान दिया:

> *"यदि पत्नी या महिला जिस पर परंतुक लागू होता है, को अपने पति या पुरुष साथी के पुरुष रिश्तेदारों के विरुद्ध, जैसा भी मामला हो, साझा घर के संबंध में आवास आदेश प्राप्त करने के लिए बाध्य किया जाता है, <u>तो उक्त अधिनियम की धारा 19 के तहत आदेश पूरी तरह से अप्रभावी होगा क्योंकि साझा घर में रहने वाले पति या पुरुष साथी की महिला रिश्तेदार ऐसी पत्नी या साझा घर की ऐसी महिला के कब्जे को बाधित करना जारी रखेंगी,</u> या ऐसी पीड़ित पत्नी या महिला को साझा घर में स्वीकृत करने से रोकती रहेंगी।"*
>
> (*जोर दिया गया*)

12. घरेलू हिंसा अधिनियम एक धर्मनिरपेक्ष कानून है, जो दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 125 के समान है। इसे "संविधान के तहत गारंटीकृत महिलाओं के अधिकारों की अधिक प्रभावी सुरक्षा प्रदान करने के लिए अधिनियमित किया गया था, जो परिवार के भीतर होने वाली किसी भी तरह की हिंसा की शिकार हैं"। आवास के अधिकार के उपाय की शुरूआत एक क्रांतिकारी और पथप्रदर्शक कदम है, जो अधिनियम के उद्देश्यों को आगे बढ़ाने के लिए उठाया गया है, और उपाय के दायरे को सीमित करने का कोई भी प्रयास अधिनियम की प्रभावशीलता को कम करेगा। इसलिए, इस योजना और अधिनियम के उद्देश्यों के विपरीत होगा कि इसे केवल ऐसे मामलों तक ही सीमित रखा जाए जहां पति के

पास कुछ संपत्ति है या उसमें उसका हिस्सा है, क्योंकि घरेलू हिंसा अधिनियम के तहत कार्यवाही में सास भी प्रत्यर्थी हो सकती है और उसी अधिनियम के तहत उपलब्ध उपायों को उसके खिलाफ लागू किया जाना आवश्यक होगा।

13. फिर से, एचयूएफ की अवधारणा को लाकर "संयुक्त" परिवार की संपत्ति के संदर्भ को सीमित करना, प्रावधान के आवेदन को उस बिंदु तक सीमित करना होगा जो संसदीय मंशा के विपरीत है कि कानून एक गैर-सांप्रदायिक है। यहाँ एक परिवार की "संयुक्त" स्थिति स्पष्ट रूप से एक सामान्य अर्थ में है, और एचयूएफ की धारणाओं को आयात करने से अनजाने में समुदाय के एक वर्ग को अधिक लाभ मिलेगा, जो संसद का कभी इरादा नहीं था। सामान्य अर्थ में, यह लोगों के एक समूह को संदर्भित करता है, जो रक्त या विवाह से संबंधित हैं, एक ही घर में रहते हैं और इसके उदाहरण भारत के लगभग सभी हिस्सों में पाए जा सकते हैं। भारत में सामान्य प्रथा यह है कि बेटा और उसकी पत्नी शादी के बाद (पति के) माता-पिता के घर में रहते हैं। भले ही बच्चे के वयस्क होने पर उसका भरण-पोषण करने का कानूनी दायित्व समाप्त हो जाता है, लेकिन माता-पिता और बच्चे के बीच कानूनी संबंध जारी रहता है। कानून में "संयुक्त परिवार" की अवधारणा हिंदू कानून के लिए विशिष्ट है। मुस्लिम कानून, ईसाई कानून या किसी अन्य व्यक्तिगत कानून में एचयूएफ के समान "संयुक्त परिवार" की कोई अवधारणा नहीं पाई जा सकती है।

14. संयुक्त परिवार को एचयूएफ के बराबर मानकर सीमित व्याख्या स्वीकार करने का खतरा भेदभाव को जन्म देगा, क्योंकि एचयूएफ (और इसलिए हिंदू) से संबंधित साझा घर में रहने वाली महिलाओं को हिंदू धर्म को मानने के कारण गैर-हिंदू महिलाओं की तुलना में अधिक सुरक्षा मिलेगी। साथ ही, हिंदुओं में भी, एचयूएफ

में विवाहित या रहने वाली महिलाओं को, पति के साथ रहने वाली महिलाओं की तुलना में, जिनके माता-पिता संपत्ति के मालिक हैं - बत्रा के आवेदन पर - अधिनियम के तहत संरक्षण मिलेगा; बाद वाले को कोई संरक्षण नहीं मिलेगा। इस विसंगति से बचने के लिए ही संसद ने स्पष्ट किया कि "साझा घर" के "प्रत्यर्थी" की हकदारी के बावजूद, धारा 19(1)(क) के तहत संरक्षण आदेश दिया जा सकता है।

15. "साझा घर" की परिभाषा घरेलू रिश्ते के तथ्य पर जोर देती है और परिभाषा के अनुसार उक्त घर के स्वामित्व की कोई जांच आवश्यक नहीं है। यहां तक कि अगर घर के स्वामित्व के पहलू की जांच की जाती है, तो परिभाषा काफी व्यापक जाल बिछाती है। यह समावेशी शब्दों में लिखा गया है और किसी भी तरह से संपूर्ण नहीं है (एस. प्रभाकरन बनाम केरल राज्य, 2009 (2) आरसीआर 883)। इसमें कहा गया है कि "...इसमें ऐसा घर <u>शामिल</u> है, चाहे वह <u>पीड़ित व्यक्ति</u> और प्रत्यर्थी द्वारा संयुक्त रूप से स्वामित्व में हो या किराए पर लिया गया हो या उनमें से <u>किसी एक के स्वामित्व में हो या किराए पर लिया गया हो</u>, जिसके संबंध में पीड़ित व्यक्ति या प्रत्यर्थी या दोनों का संयुक्त रूप से या अकेले कोई अधिकार, हकदारी, हित या <u>इक्विटी</u> हो और <u>इसमें ऐसा घर शामिल है</u> जो संयुक्त परिवार से संबंधित हो सकता है, जिसका प्रत्यर्थी सदस्य है, भले ही प्रत्यर्थी या पीड़ित व्यक्ति का साझा घर में कोई अधिकार, हकदारी या हित हो (जोर दिया गया)।

16. यहां यह ध्यान रखना अनुचित नहीं होगा कि परिभाषा में "प्रत्यर्थी" शब्द का प्रयोग अयोग्य है और न ही धारा 12, 17 या 19 के तहत इसके लिए कोई योग्यता है। इसलिए, यह निष्कर्ष निकालने का कोई कारण नहीं है कि परिभाषा उस घर पर लागू नहीं होती है जो सास या किसी अन्य महिला रिश्तेदार के

स्वामित्व में है, क्योंकि वे धारा 2(थ) के तहत "प्रत्यर्थी" की परिभाषा के अंतर्गत आते हैं।" (जोर दिया गया)

16. एकल न्यायाधीश के उपरोक्त निर्णय को इवनीत सिंह बनाम प्रशांत चौधरी (डीबी, आ.प्र.अ. (मूल पक्ष) 71-72/2011, 08.11.2011 को तय) में खंड न्यायपीठ द्वारा अनुमोदित किया गया था।

"12. *इस प्रकार, अधिक से अधिक यह कहा जा सकता है कि साझे घर में आवास के लिए पत्नी के दावे से संबंधित मुद्दे पर निर्णय करते समय चर्चा पत्नी के पक्ष में इस धारणा से शुरू होनी चाहिए कि कानून साझे घर में आवास जारी रखने के लिए उसके पक्ष में झुकता है और केवल विपक्षी पक्षकार द्वारा स्पष्ट रूप से और वस्तुनिष्ठ रूप से पर्याप्त परिस्थितियों का प्रकटीकरण किए जाने पर ही अधिनियम की धारा 10 की उपधारा 1 के खंड (च) द्वारा परिकल्पित आदेश पारित किया जा सकता है।*

13. वर्तमान मामले में अधिनियम की धारा 19 की उपधारा 1 के खंड (च) का सहारा लेने की परिस्थिति अपीलार्थी की सास का अत्यधिक खराब स्वास्थ्य होगा; जिसके बारे में चिकित्सा दस्तावेज दर्शाते हैं कि वह 'टैचीकार्डिया' से पीड़ित है और हृदय की मांसपेशियां लगभग 20% काम कर रही हैं। अपने घर में नवविवाहित बहू के साथ लगातार मतभेद का निश्चित रूप से सास पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। इसके अलावा, अपीलार्थी का पति वर्तमान में हैदराबाद में है, न कि दिल्ली में।

14. यह स्पष्ट है कि अधिनियम की धारा 19 की उपधारा 1 के खंड (च) का उद्देश्य बहू और उसके ससुराल वालों के अधिकारों के बीच संतुलन बनाना है, यदि बहू द्वारा साझा घर का दावा उस

भवन से संबंधित है जिसमें वैवाहिक घर बनाया गया था जो उसकी सास या ससुर का है।"

17. वर्षा कपूर बनाम यूओआई एवं अन्य 2010 VI एडी (दिल्ली) 472 के एक पूर्व निर्णय में एक अन्य खंड न्यायपीठ ने अधिनियम की धारा 2(थ) की व्याख्या की तथा यह भी निष्कर्ष निकाला कि "प्रत्यर्थी" में पति की महिला रिश्तेदार भी शामिल हो सकती हैं। खंड न्यायपीठ ने निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया:

"15. डी.वी. अधिनियम के उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए और जब हम धारा 2(थ) को अन्य प्रावधानों के साथ पढ़ते हैं, तो हमारा कार्य काफी सरल है, जो पहली नज़र में थोड़ा पेचीदा लग सकता है। हमारा विचार है कि डी.वी. अधिनियम की धारा 2(थ) के अंतर्गत जिस तरह से "प्रत्यर्थी" की परिभाषा दी गई है, उसे दो स्वतंत्र और परस्पर अनन्य भागों में विभाजित किया जाना चाहिए, न कि मुख्य प्रावधान के सहायक के रूप में परंतुक को मानना चाहिए। ये दो भाग हैं:

क) मुख्य अधिनियमित भाग जो उन पीड़ित व्यक्तियों से संबंधित है, जो "घरेलू संबंध में हैं"। इस प्रकार, उन मामलों में जहां पीड़ित व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति के साथ घरेलू संबंध में है, जिसके खिलाफ उसने डी.वी. अधिनियम के अंतर्गत कोई राहत मांगी है, उस मामले में, प्रत्यर्थी के रूप में ऐसा व्यक्ति वयस्क पुरुष होना चाहिए। यह देखते हुए कि पीड़ित व्यक्ति महिला होना चाहिए, घरेलू रिश्ते में पीड़ित व्यक्ति माँ, बहन, बेटी, भाभी आदि हो सकती है।

ख) दूसरी ओर, परंतुक सीमित और विशिष्ट श्रेणी के पीड़ित व्यक्ति से संबंधित है, जैसे पत्नी या विवाह की प्रकृति में रिश्ते में

रहने वाली महिला। इस कानून के द्वारा पहली बार, विधायक ने उन महिलाओं को भी पत्नी के समान मानते हुए लिव इन रिलेशनशिप को स्वीकार किया है, जो औपचारिक रूप से विवाहित नहीं हैं, लेकिन किसी पुरुष के साथ रिश्ते में रह रही हैं, जो विवाह की प्रकृति का है, हालांकि वे पत्नी के बराबर नहीं हैं। इसलिए, यह परंतुक लिव इन रिलेशनशिप में रहने वाली पत्नी या महिला के लिए है। उनके मामले में, "प्रत्यर्थी" की परिभाषा को केवल "वयस्क पुरुष व्यक्ति" तक सीमित न करके, बल्कि "पति या पुरुष साथी का रिश्तेदार" भी शामिल करके व्यापक किया गया है, जैसा भी मामला हो।

इसके बाद यह है कि एक ओर, पत्नी या विवाह की प्रकृति में रिश्ते में रहने वाली महिला के अलावा अन्य पीड़ित व्यक्ति, जैसे बहन, मां, बेटी या भाभी पीड़ित व्यक्ति के रूप में केवल वयस्क पुरुष व्यक्ति के खिलाफ आवेदन दायर कर सकते हैं। लेकिन दूसरी ओर, विवाह की प्रकृति में रिश्ते में रह रही पत्नी या महिला को न केवल पति या पुरुष साथी के खिलाफ, बल्कि उसके रिश्तेदारों के खिलाफ भी शिकायत दर्ज करने का अधिकार दिया गया है।

16. परिभाषा को दो भागों में विभाजित करने के बाद, "पति या पुरुष साथी के रिश्तेदार" की अभिव्यक्ति के तहत एक स्त्री/महिला को शामिल करने का औचित्य समझना मुश्किल नहीं है। यह सर्वविदित है कि यदि पति द्वारा पत्नी को परेशान किया जाता है, तो परिवार के अन्य सदस्य भी पत्नी के साथ क्रूरता करने में पति का साथ दे सकते हैं और ऐसे परिवार के सदस्यों में अनिवार्य रूप से महिला रिश्तेदार भी शामिल होंगी। यदि सीमित व्याख्या दी जाती है, जैसा कि याचिकाकर्ता ने तर्क दिया है, तो जिस उद्देश्य के लिए यह अधिनियम बनाया गया है, वह ही विफल हो जाएगा। पति या अन्य पुरुष सदस्यों के लिए यह सुनिश्चित करके उपाय

को विफल करना बहुत आसान होगा कि पत्नी पर हिंसा महिला सदस्यों द्वारा की जाती है। यहां तक कि जब धारा 18 के तहत संरक्षण आदेश या धारा 19 के तहत आवास आदेश पारित किया जाता है, तो पति की महिला रिश्तेदारों द्वारा उक्त आदेशों का उल्लंघन करके इसे आसानी से विफल किया जा सकता है।

19. विधि का यह भी सर्वमान्य सिद्धांत है कि किसी कानून में किसी प्रावधान की व्याख्या करते समय न्यायालय का यह कर्तव्य है कि वह सभी प्रावधानों को प्रभावी बनाए। जब उपरोक्त प्रावधानों को डी.वी. अधिनियम की योजना को ध्यान में रखते हुए संयुक्त रूप से पढ़ा जाता है, तो यह पूरी तरह से स्पष्ट हो जाता है कि विधायक का इरादा था कि महिला रिश्तेदार भी पत्नी या विवाह की प्रकृति में रहने वाले रिश्ते में रहने वाली महिला द्वारा शुरू की गई कार्यवाही में प्रत्यर्थी हों, पति की महिला रिश्तेदारों के हाथों उक्त आदेशों का उल्लंघन करके इसे आसानी से नकारा जा सकता है।

19. यह भी कानून का एक अच्छी तरह से मान्यता प्राप्त सिद्धांत है कि कानून में किसी प्रावधान की व्याख्या करते समय, सभी प्रावधानों को प्रभावी करना न्यायालय का कर्तव्य है। जब उपरोक्त प्रावधानों को डी.वी. अधिनियम की योजना को ध्यान में रखते हुए संयुक्त रूप से पढ़ा जाता है, तो यह स्पष्ट रूप से स्पष्ट हो जाता है कि विधायक का इरादा था कि महिला रिश्तेदार भी पत्नी या विवाह की प्रकृति में रहने वाले रिश्ते में रहने वाली महिला द्वारा शुरू की गई कार्यवाही में प्रत्यर्थी हों।

18. इस व्याख्या को *संध्या मनोज वानखड़े बनाम मनोज भीमराव वानखड़े*, [2011] 2 एससीआर 261 में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अनुमोदित किया गया है। उस मामले में उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश ने अपीलार्थी

को उसके वैवाहिक घर को खाली करने के निर्देश सहित रिट याचिका का निपटारा किया था, जो दूसरे प्रत्यर्थी के नाम पर था और साथ ही विचारण न्यायालय को छह महीने के भीतर पत्नी के विविध आपराधिक आवेदन की सुनवाई में तेजी लाने का निर्देश दिया था। अपीलार्थी द्वारा दायर शिकायत से 'अन्य सदस्यों' के नाम हटाने से संबंधित आदेश की पुष्टि करते हुए एक और निर्देश दिया गया था। उच्च न्यायालय के निर्णय को सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई थी। अपील को स्वीकार करते हुए, सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया:

> *"13. यह सच है कि धारा 2(थ) के परंतुक में भी "महिला" शब्द का इस्तेमाल नहीं किया गया है, लेकिन दूसरी ओर, यदि विधानमंडल का इरादा महिलाओं को शिकायत के दायरे से बाहर रखने का था, जिसे पीड़ित पत्नी द्वारा दायर किया जा सकता है, तो महिलाओं को विशेष रूप से बाहर रखा जाता, बजाय इसके कि प्रावधान में यह परंतुक किया जाता कि पति या पुरुष साथी के रिश्तेदार के खिलाफ भी शिकायत दर्ज की जा सकती है। "रिश्तेदार" शब्द को कोई प्रतिबंधात्मक अर्थ नहीं दिया गया है, न ही उक्त शब्द को घरेलू हिंसा अधिनियम, 2005 में विशेष रूप से परिभाषित किया गया है, ताकि इसे केवल पुरुषों के लिए विशिष्ट बनाया जा सके।*
>
> *14. ऐसी परिस्थितियों में, यह स्पष्ट है कि विधानमंडल का कभी भी पति या पुरुष साथी की महिला रिश्तेदारों को घरेलू हिंसा अधिनियम, 2005 के प्रावधानों के तहत की जा सकने वाली शिकायत के दायरे से बाहर रखने का इरादा नहीं था।*

> *15. हमारे विचार में, सत्र न्यायाधीश और उच्च न्यायालय दोनों ने उपरोक्त अधिनियम की धारा 2(थ) के मुख्य भाग में "प्रत्यर्थी" अभिव्यक्ति की परिभाषा से प्रभावित होकर अन्यथा निर्णय लेने में त्रुटि की।*

19. इस न्यायालय की राय में, शुमिता दीदी संधू के निर्णय में, उचित सम्मान सहित, "साझा घर" की संपूर्ण परिभाषा का विश्लेषण नहीं किया गया। न ही इसने 2005 के अधिनियम द्वारा दिए गए अवधारणा और आवास के अधिकार को "प्रत्यर्थी" की परिभाषा से जोड़ा, जिसमें पति की महिला रिश्तेदार शामिल हैं, न कि केवल पुरुष रिश्तेदार। यह निर्णय *वर्षा कपूर* मामले में दिए गए निर्णय और *संध्या मनोज वानखेड़े* मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय से बहुत पहले दिया गया था। इस न्यायालय की राय में, *प्रत्यर्थी के पास संपत्ति में कोई अधिकार या हित* था या नहीं, इस बात की *परवाह किए बिना पति* की महिला रिश्तेदारों के मुकाबले महिलाओं के अधिकारों पर कोई चर्चा न किए जाने के परिणामस्वरूप यह उस मामले के तथ्यों पर निर्णय लेने तक सीमित हो गया। *विमलबेन अजीतभाई पटेल बनाम वत्सलाबेन अशोकभाई पटेल एवं अन्य,* 2008(4) एससीसी 649 में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भी ध्यान देना आवश्यक होगा। वहां, पत्नी भरण-पोषण आदेश की लाभार्थी थी, जिसे उसकी सास की संपत्ति के विरुद्ध निष्पादन के माध्यम से लागू करने की मांग की गई थी। पत्नी ने दावा किया कि चूंकि यह एक *"साझा घर"* था, इसलिए संपत्ति को कुर्क किया जा सकता था। इस तर्क को खारिज करते हुए,

सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि भरण-पोषण प्रदान करने का दायित्व पति का था और उस संबंध में कोई भी आदेश उसकी व्यक्तिगत परिसंपत्तियों या संपत्तियों की कुर्की करके उसके विरुद्ध लागू किया जा सकता है। यह इस संदर्भ में था कि न्यायालय ने माना कि सास का साझा घर कुर्की का विषय नहीं हो सकता। उस निर्णय का संदर्भ अलग था क्योंकि सर्वोच्च न्यायालय ने, इस न्यायालय की राय में, यह निर्णय नहीं लिया कि *"साझा घर"* की परिभाषा के बावजूद पत्नी को पति के स्वामित्व वाले परिसर में आवास का अधिकार देने के बावजूद, वह वहां रहने का दावा नहीं कर सकती। बल्कि, भरण-पोषण की कार्यवाही में, दावा सास की संपत्ति के विरुद्ध नहीं हो सकता है - एक ऐसा क्षेत्र जिस पर वर्तमान मामले में कोई चर्चा नहीं की गई है।

20. महत्वपूर्ण रूप से, 2005 के अधिनियम द्वारा संसद का इरादा साझा घर में पीड़ित व्यक्तियों के अधिकारों को सुरक्षित करना था, जिसे प्रत्यर्थी (पति के रिश्तेदार सहित) द्वारा किराए पर लिया जा सकता था या जिसके संबंध में प्रत्यर्थी के पास संयुक्त रूप से या अकेले कोई अधिकार, हकदारी, हित या "इक्विटी" थी। उदाहरण के लिए, एक विधवा (या इस मामले में, एक बहू, जो अपने पति से अलग हो गई है) अपनी सास के साथ, बाद के स्वामित्व वाले परिसर में रहती है, एक "घरेलू संबंध" के अंतर्गत आती है। साझा घर में आवास के अधिकार को बाधित न करने का दायित्व तब भी जारी रहेगा, जब सास के पास कोई अधिकार, हकदारी या हित न हो, लेकिन वह

एक किरायेदार हो, या उन परिसरों में "इक्विटी" (जैसे कि कब्जे का न्यायसंगत अधिकार) की हकदार हो। ऐसा इसलिए है क्योंकि परिसर एक "साझा घर" होगा। इन परिस्थितियों में बहू बेदखली से सुरक्षा की हकदार है, हालांकि उसके पति के पास कभी भी परिसर में कोई मालिकाना हक नहीं था। यह अधिकार हकदारी पर निर्भर नहीं है, बल्कि केवल आवास के तथ्य पर निर्भर है। इस प्रकार, भले ही सास किराएदार हो, फिर भी, उस आधार पर, या इक्विटी रखने वाले किसी व्यक्ति को, बहू को बेदखल करने से रोका जा सकता है। यदि सास मालिक है, तो बहू को साझा घर में रहने की अनुमति देने का दायित्व, जब तक उसके और पति के बीच वैवाहिक संबंध बना रहता है, जारी रहता है। एकमात्र अपवाद 19(1)(ख) का परंतुक है, जो महिलाओं को साझा घर से खुद को हटाने के निर्देश से छूट देता है। धारा 19 के तहत अन्य राहतों के लिए ऐसा कोई अपवाद नहीं बनाया गया है, विशेषत: संरक्षण आदेशों के संबंध में। यदि संसद का महिलाओं के पक्ष में एक और अपवाद बनाने का इरादा होता, तो वह ऐसा कर देती। यह चूक जानबूझकर की गई थी और अधिनियम की बाकी योजना के अनुरूप थी। घरेलू संबंधों के अन्य मामले भी हो सकते हैं जैसे अनाथ बहन या विधवा माँ, अपने भाई या बेटे के घर में रह रही हो। दोनों ही घरेलू संबंध की परिभाषा के अंतर्गत आते हैं, क्योंकि भाई स्पष्ट रूप से प्रत्यर्थी है। ऐसे मामले में भी, यदि विधवा माँ या बहन को बेदखल किए जाने की धमकी दी जाती है, तो वे अधिनियम के तहत राहत प्राप्त कर सकती हैं, भले ही संपत्ति पर बेटे या भाई का विशेष स्वामित्व हो।

इस प्रकार, उन संपत्तियों के विरुद्ध आवास के अधिकार को बाहर करना, जहाँ पति का कोई अधिकार, हिस्सा, हित या हकदारी नहीं है, आवास के अधिकार की उपयोगिता की सीमा को गंभीर रूप से कम कर देगा।

21. दूसरा पहलू, जिस पर यह न्यायालय प्रकाश डालना चाहता है, वह यह है कि 2005 का अधिनियम सभी समुदायों पर लागू होता है, तथा इसे "संविधान के तहत गारंटीकृत महिलाओं के अधिकारों की अधिक प्रभावी सुरक्षा प्रदान करने के लिए अधिनियमित किया गया था, जो परिवार के भीतर होने वाली किसी भी प्रकार की हिंसा की शिकार हैं"। आवास का अधिकार तथा इसे लागू करने के लिए तंत्र का निर्माण एक क्रांतिकारी उपाय है, जिसके प्रति न्यायालयों को सजग रहना चाहिए। साझा घर में आवास के अधिकार सहित उपचारों के दायरे को सीमित करना, इस अधिनियम के उद्देश्य को कमजोर करेगा। इसलिए, 2005 के अधिनियम को केवल ऐसे मामलों तक सीमित करना, जहां पति अकेले ही किसी संपत्ति का मालिक है या उसमें उसका हिस्सा है, अधिनियम की योजना तथा उद्देश्यों के साथ-साथ धारा 2(ध) के असंदिग्ध पाठ के भी विपरीत है। महत्वपूर्ण रूप से, सास (या ससुर, या उस मामले में, *"पति का रिश्तेदार"*) भी 2005 अधिनियम के तहत कार्यवाही में प्रत्यर्थी हो सकता है और उसी अधिनियम के तहत उपलब्ध उपायों को उनके खिलाफ लागू किया जाना आवश्यक है।

22. इसी तरह, कुछ विद्वान एकल न्यायाधीशों द्वारा की गई व्याख्या कि जहां पति के पास कुछ अधिकार हैं (एचयूएफ के सदस्य के रूप में, यानी हिंदू अविभाजित परिवार) और यदि वे परिसर साझा घर थे, तो पत्नी अपने आवास के अधिकार को लागू कर सकती है, अधिनियम की आंतरिक रूप से असंगत और प्रतिबंधात्मक व्याख्या भी है। जैसा कि इवनीत सिंह में स्पष्ट किया गया है, ऐसा निर्माण संसदीय मंशा के विपरीत है कि कानून एक गैर-सांप्रदायिक है। वास्तव में, धारा 2 (ध) के तहत संदर्भित परिवार की "संयुक्त" स्थिति एक सामान्य अर्थ में है। इसे एचयूएफ के साथ बराबर करने से प्रत्यर्थीगण के एक समूह को अनपेक्षित लाभ होगा, जो हिंदू हैं। सामान्य रूप से बोलते हुए, "संयुक्त परिवार" से तात्पर्य ऐसे लोगों के समूह से है, जो रक्त या विवाह से संबंधित हैं, एक ही घर में रहते हैं। इसके उदाहरण भारत के लगभग सभी हिस्सों में पाए जा सकते हैं। भारत में आम प्रथा यह है कि विवाह के बाद बेटा और उसकी पत्नी (पति के) माता-पिता के घर में रहते हैं, हालांकि बच्चे के वयस्क होते ही उसे पालने का कानूनी दायित्व समाप्त हो जाता है, लेकिन माता-पिता और बच्चे के बीच कानूनी संबंध जारी रहता है। कानून में "संयुक्त परिवार" की अवधारणा हिंदू कानून के लिए विशिष्ट है। मुस्लिम कानून, ईसाई कानून या किसी अन्य व्यक्तिगत कानून में एचयूएफ के समान "संयुक्त परिवार" की कोई अवधारणा नहीं पाई जा सकती है। इसलिए, एचयूएफ के बराबर "संयुक्त परिवार" की प्रतिबंधात्मक व्याख्या करने से निहित भेदभाव पैदा होगा, क्योंकि एचयूएफ (और इसलिए, हिंदू) से संबंधित साझा घर में रहने

वाली महिलाओं को हिंदू धर्म को मानने के कारण अन्य गैर-हिंदुओं की तुलना में अधिक सुरक्षा मिलेगी। वास्तव में, हिंदुओं में भी, जो महिलाएं एचयूएफ में विवाहित हैं या रहती हैं, उनके पति के साथ रहने वाली महिलाओं की तुलना में, जिनके माता-पिता संपत्ति के मालिक हैं - बत्रा के आवेदन पर - उन्हें अधिनियम के तहत संरक्षण प्राप्त होगा, जबकि बाद वाले को नहीं। इस असमानता को संसद द्वारा संबोधित किया गया था, जिसमें स्पष्ट शब्दों में कहा गया था कि "साझा घर" पर "प्रत्यर्थी" की हकदारी के बावजूद, धारा 19(1)(क) के तहत संरक्षण आदेश दिया जा सकता है।

23. इस मामले के तथ्यों में वैवाहिक मतभेद के बाद पति द्वारा अपनी जिम्मेदारियों से बचने के क्लासिक तत्व शामिल हैं। वह कथित रूप से गायब हो गया और उसकी माँ ने उसे "त्याग" दिया। फिर अपीलार्थी की सास ने बहू और उसके पोते-पोतियों को बेदखल करने के लिए वाद दायर किया, यह दावा करते हुए कि उसका अब अपने बेटे या बहू से कोई संबंध नहीं है। उसने वसीयत के आधार पर वाद संपत्ति के स्वामित्व का दावा किया। बहू ने वसीयत को स्वीकार नहीं किया है। न ही प्रोबेट कार्यवाही में यह साबित हुआ है। अक्सर, बेटे अपनी पत्नियों के साथ परेशानी या मतभेद के संकेत पर अपने रिश्तेदारों के पक्ष में घर छोड़ देते हैं, या संपत्ति या स्वामित्व अधिकार या अचल संपत्तियों में हिस्सेदारी हस्तांतरित कर देते हैं। इसी तरह, पति के माता-पिता अक्सर ऐसे मामलों में उन्हें "अस्वीकार" कर देते हैं, जब बेटा अपने

माता-पिता में से किसी एक या दोनों के स्वामित्व वाले सामान्य या "संयुक्त" परिसर से बाहर चला जाता है, जब वैवाहिक मतभेद शुरू हो जाती है। न्यायालय को कब्जे के लिए वाद पर विचार करते समय और उन्हें छोटा करते समय अपने दृष्टिकोण में सावधानी बरतनी चाहिए, जो वास्तव में वादी की बहू के खिलाफ निर्देशित हैं, अन्यथा साझा घरों में आवास का अधिकार एक मात्र कल्पना, एक रंजीदा भ्रांति होगा जिसका कानून बड़े पैमाने पर वादा करता है, लेकिन शायद ही कभी, लागू करने में सक्षम होता है। वास्तव में, सार्वजनिक नोटिस या विज्ञापन के माध्यम से बेटों को "अस्वीकार" करने की रणनीति को हल्के में नहीं लिया जाना चाहिए। उदाहरण के लिए, यदि किसी माता-पिता में से कोई भी पुत्र को त्याग देता है, तो उस माता-पिता की मृत्यु, यदि वसीयत नहीं की गई है, तब भी उस पुत्र को संपत्ति का हस्तांतरण होगा। वास्तव में, मात्र घोषणा का कोई निर्णायक कानूनी प्रभाव नहीं होता है, जिससे सभी कानूनी रूप से प्रासंगिक पारिवारिक संबंध टूट जाते हैं। इस प्रकार, त्याग विलेख या परिवार के विभाजन या सदस्यों के बीच अलगाव के अन्य औपचारिक विलेख के अभाव में, न्यायालय को ऐसे अस्थायी तथ्यों के आधार पर पति के परिवार के सदस्यों के विरुद्ध पत्नियों को वैधानिक अधिकारों से वंचित करने में सावधानी बरतनी चाहिए। इसके विपरीत, यदि न्यायालय ऐसे कृत्यों पर भरोसा करता है, तो 2005 के अधिनियम द्वारा पत्नी के पक्ष में अधिनियमित लाभ पति और उसके परिवार के बीच कथित और संभवतः क्षणिक मतभेदों के कारण दरकिनार कर दिए जाएंगे। वास्तव में, ऐसा

दृष्टिकोण न तो कानूनी रूप से तर्कसंगत है, न ही अधिनियम की योजना को देखते हुए व्यवहार्य है।

24. उपरोक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए, विद्वान एकल न्यायाधीश के आक्षेपित निर्णय और डिक्री को रद्द किया जाता है; पक्षकारगण को निर्देश दिया जाता है कि वे वाद में आगे की कार्यवाही के लिए निर्देश हेतु रोस्टर आवंटन के अनुसार 6 फरवरी, 2014 को संबंधित एकल न्यायाधीश के समक्ष उपस्थित हों। उपरोक्त परिस्थितियों में, लागत के संबंध में किसी भी आदेश के बिना अपील स्वीकार की जाती है।

एस. रवींद्र भट
(न्यायाधीश)

नजमी वजीरी
(न्यायाधीश)

15 जनवरी, 2014

(Translation has been done through AI Tool: SUVAS)

अस्वीकरण : *देशी भाषा में निर्णय का अनुवाद मुकद्दमेबाज़ के सीमित प्रयोग हेतु किया गया है ताकि वो अपनी भाषा में इसे समझ सकें एवं यह किसी अन्य प्रयोजन हेतु प्रयोग नहीं किया जाएगा/ समस्त कार्यालयी एवं व्यावहारिक प्रयोजनों हेतु निर्णय का अंग्रेज़ी स्वरूप ही अभिप्रमाणित माना जाएगा और कार्यान्वयन तथा लागू किए जाने हेतु उसे ही वरीयता दी जाएगी।*